P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-2* ISSUE-12* March- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

भारतीय संस्कृत के संवर्द्धन में संस्कृत भाषा की भूमिका

अनीता नैन
सहायक प्रोपफेसर,
संस्कृत विभाग,
सेठ बनारसी दास शिक्षण महाविद्यालय,
कुरुक्षेत्र

सारांश

आज के वैश्वीकरण युग में बदलते परिवेश और प्रतिमानों की चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति की गहन और विशद व्याख्या अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी मौलिकता है। जो उसे विलक्षण बनाती है। यही संस्कृति परम्परानुसार पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है और इसमें अनेक सदियों का संचित अनुभव शामिल होता है। अतः संस्कृति को समाज की आत्मा भी कहा जा सकता है। प्रस्तुत शोधपत्रा का मुख्य विषय हैः सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण, संचरण एवं संवर्धन में संस्कृत भाषा की भूमिका। अतः इसके लिए मैं संस्कृत भाषा को केन्द्रित करना चाहूँगी क्योंकि यदि भारतीय संस्कृति का उद्भव कहीं से हुआ है तो वह संस्कृत भाषा ही है और यह हमारे लिए एक विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर भी है।

मुख्य शब्द : संस्कृति, संरक्षण, संचरा, संवर्(न, संगच्छछां, संवदध्वम्, वसुधैव कुटुम्बकम।

प्रस्तावना

संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्येध्यमत्रा तदुच्यते
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते।।
अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः
शिक्षयोषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुवर्(नः।।

साहित्य और संस्कृति एक दूसरे के समकालीन कहे जा सकते हैं। क्योंकि भारतीय संस्कृति का उद्भव भी वेदों से हुआ है, जिसका स्पष्ट उद्घोष हैं– हे मानव! तुम श्रेष्ठ बनो और संसार का कल्याण करो अर्थात् श्रेष्ठता ही संस्कृति है। यही श्रेष्ठता जीवन दर्शन और नैतिक मूल्यों की आधरशिला है। अतः जो कुछ भी सुन्दर, उपयोगी, उत्कृष्ट व अर्थवान है, संस्कृति का ही सार रूप है। उसका मूलरूप साहित्य, ललितकलाओं और ज्ञान–विज्ञान के विस्तार में देखा जा सकता है। साहित्य एवं ज्ञान विज्ञान के विकास में भाषाओं की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

आज के वैश्वीकरण युग में बदलते परिवेश और प्रतिमानों की चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति की गहन और विशद व्याख्या अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी मौलिकता है। जो उसे विलक्षण बनाती है। यही संस्कृति परम्परानुसार पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है और इसमें अनेक सदियों का संचित अनुभव शामिल होता है। अतः संस्कृति को समाज की आत्मा भी कहा जा सकता है। प्रस्तुत शोधपत्रा का मुख्य विषय हैः सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण, संचरण एवं संवर्(न में संस्कृत भाषा की भूमिका। अतः इसके लिए मैं संस्कृत भाषा को केन्द्रित करना चाहूँगी क्योंकि यदि भारतीय संस्कृति का उद्भव कहीं से हुआ है तो वह संस्कृत भाषा ही है और यह हमारे लिए एक विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर भी है।

शोधकाल

प्रस्तुत शोधपत्र का अध्ययन एवं लेखन अक्टूबर 2015 से दिसम्बर 2015 के मध्य किया गया।

साहित्यावलोकन

संस्कृति एवं साहित्य विषय पर गहन चिंतन की परम्परा रही है। अनेक विद्वानों ने संस्कृति एवं भाषा का सम्बन्ध एक मत से स्वीकार किया है। डॉ0 दलविन्द कुमार ने अपने शोध में ''भारतीय संस्कृति की संवाहक भाषायें'' शीर्षक से ''भाषा एवं संस्कृति की अन्योन्याश्रिता'' पर प्रचुर प्रकाश डाला है। डॉ0 निर्मल सिंग्रोहा ने अपने शोधपत्र ''भारतीय भाषाओं की अस्मिता : संकट एवं समाधान'' के माध्यम से संस्कृति के संरक्षण में भाषा की भूमिका पर मंथन किया है। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने ''संस्कृति के चार अध्याय'' नामक ग्रन्थ में भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। आर्य तथा आर्येतर

संस्कृतियों के मिलन से ही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी है। उन्होंने समस्त भारत की संस्कृति में एकता को दर्शाया है।

संस्कृति एवं साहित्य

साहित्य शब्द का अर्थ है : 'स+हित' अर्थात् जो अपने साथ हित ही हित रहता है अहित कुछ भी नहीं, वही साहित्य है। काव्यप्रकाशकार ने इसकी सर्वांगीण परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है कि जिससे मनुष्य को यश, वस्तुओं का अर्थ, व्यवहार शिव ;कल्याणद्ध का संरक्षण, अशिव का विनाश, पत्नी की भाँति हितकारी सम्मति प्राप्त हो, वही साहित्य है। साहित्य चाहे कैसा भी हो उस पर अपनी संस्कृति की छाप स्पष्ट होती है यथा– उड़िया साहित्य, उड़िया संस्कृति से प्रभावित होगा। इसलिए साहित्य और संस्कृति का चोली–दामन का साथ है। एक श्रेष्ठ साहित्यकार का कर्तव्य है– संस्कृति का संरक्षण, संचरण एवं संव(र्न करना। भारतीय संस्कृति जीवन मूल्यों पर आधरित है। ये जीवनमूल्य वेद, उपनिषद् एवं दार्शनिक ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। यदि हम संस्कृत भाषा का अध्ययन–अध्यापन करेंगे तभी इन जीवन–मूल्यों से परिचित हो सकते हैं। अन्यथा जिस प्रकार पर्यावरण से शु(ता लुप्त हो रही है उसी प्रकार जीवन से संस्कारित मूल्य भी एक दिन लुप्त हो जाएंगें और शेष बचेगी कृत्रिमता। संस्कारित जीवनमूल्यों को जानने के लिए हमें संस्कृत भाषा का अवलम्बन लेना ही पड़ेगा।

आज विज्ञान ने भले ही कितनी तरक्की कर ली हो, भारत में गुरुकुलों का स्थान तकनीकी विश्वविद्यालयों ने ले लिया हो किन्तु उनके प्रवेशद्वार पर दृष्टिपात करते ही हमें एक वेदवाक्य दृष्टिगोचर होता है यथा–

तेजस्विनावधितमस्तु ;आई. आई. एम. बैंगलौरद्ध
तमसो मा ज्योतिर्गमय ;आई.आई.टी. कानपुरद्ध
सि(र्भिवति कर्मणा ;आई.आई.टी., मद्रासद्ध
सि(र्मूलं प्रबन्ध्नम् ;आई.आई.एम., इन्दौरद्ध

ये कतिपय उदाहरण हैं मात्रा यह दर्शाने के लिए कि चाहे हम कितने भी आधुनिक क्यों न हो जाएं हमारी जड़े आज भी उस वटवृक्ष की भांति हैं जो दूर तक पफैली हैं।

हमारी जड़ों में संस्कृति सदैव रहेगी। वर्तमान संक्रमणकाल संस्कृत भाषा के संव(र्न के लिए चुनौतीपूर्ण तो कहा जा सकता है किन्तु कठिन नही। किंचित् अल्पप्रयास से हम संस्कृत भाषा को विश्वस्तर पर ला सकते हैं।

सांस्कृतिक धरोहर के रूप में संस्कृत भाषा का स्थान

संस्कृत भाषा को संस्कृति की संवाहक कहना समीचीन होगा क्योंकि वेदों में निहित संस्कार आज उतने ही प्रांसगिक हैं जितने कि प्राचीनकाल में थे। हमारे धर्म, पर्व, संस्कार संस्कृत भाषा के मोहताज हैं। यजुर्वेदीय मन्त्रा द्वारा भारतीय भूखण्ड में पल्लवित होने वाली संस्कृति को 'प्रथम संस्कृति', कहकर सम्पूर्ण विश्व के लिए वरणीया बताया गया है। ''सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा''[1] जन्मपूर्व गर्भाधन संस्कार से लेकर मृत्युपर्यन्त अन्तिम संस्कार तक संस्कृत के मन्त्राोच्चारण द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। वेद, उपनिषद, दर्शन, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि संस्कृत ग्रन्थ आज भी पूरे देश में मान्य हैं। उनकी कथा, चर्चा–परिचर्चा और अध्ययन आज भी होता है। कश्मीर से केरल पर्यन्त संस्कृत भाषा में साहित्य का सृजन हुआ हैं, जो इसकी व्यापकता का प्रमाण है। आधुनिक काल में भी नवजागरण का संदेश देने वाले लोग संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित थे। इनमें मुख्यतः ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्णन् मिशन तथा थियोसेपिफकल सोसायटी का नाम लिया जा सकता है। लोकमान्य बालगंगाध्र तिलक की 'गीता रहस्य', महर्षि दयानंद के 'वेदभाष्य', रविन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' डॉ. राधकृष्णन् का 'भारतीय दर्शन' उनके संस्कृत प्रेम के आदर्श परिचायक हैं। यद्यपि बौद्ध और जैन धर्मग्रन्थों ने पालि एवं प्राकृत को अपनाया लेकिन उनके प्रचार और प्रसार के लिए विद्वानों ने संस्कृत भाषा का अवलम्बन लिया।

वेदों में आयुर्वेद के महत्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन किया गया है। ऋग्वेद में वैद्य के गुण–धर्म, विविध औषधियों के लाभ, विविध चिकित्साएँ आदि का वर्णन है। यजुर्वेद में विभिन्न औषध्यिों के नाम, दीर्घायुष्य, निरोगता, तेज, वर्चस, बल, अग्नि और जल के गुण व कर्मों का वर्णन है। सामवेद में आयुर्वेद से सम्बन्ध्ति कुछ मंत्रा इन विषयों के प्रतिपादक हैं– वैद्य, चिकित्सा, दीर्घायुष्य, तेज, ज्योति बल व शत्तिफ आदि। अथर्ववेद में आयुर्वेद के प्रायः सभी अंगों–उपांगों का विस्तृत वर्णन मिलता है। मुख्यतः यहाँ 'आचार–विचार की शुद्धि' अर्थात् संयम–नियम को दीर्घायु का साध्न बताया गया है।[2]

तैतिरीय संहिता के अनुसार जिन कारणों से रोग होता है उन्हीं की दूर किया जाए। सभी रोगों का कारण विष बताया गया है तथा उस विष या रोग कृमि को नष्ट करने का भी उल्लेख है।[3]

योग प(ति विश्व को भारतीय चिन्तकों की एक अद्भुत देन है। योग दर्शन के गुरु महर्षि पतंजलि हैं। उनका मानना है कि भौतिक शरीर, मनुष्य की इच्छा शत्तिफ और मन को नियन्त्राण में ले लेना जीवन के आदर्श के लिए आवश्यक है। इसी कारण पतंजलि ने कुछ ऐसे अभ्यासों पर प्रकाश डाला हैं जिससे शारीरिक चचंलता और विकलता दूर की जा सकें। इस क्रिया से हमें बड़ी प्रभावशाली आध्यात्मिक शत्तिफ मिलती है। इससे जीवन अवध् िभी वढ़ती हैं। चेतना का शु(िकरण और मन की शान्ति के लिए भी कई मार्ग बतलाए गए हैं। योग की क्रियाओं के द्वारा हम मोक्ष अथवा मुक्ति प्राप्त करने योग्य बन सकते हैं। अतः योगदर्शन एक संयमी जीवन का अत्यन्त प्रभावपूर्ण भाग प्रस्तुत करता हैं। योगदर्शनानुसार सांसारिक दुखों से छुटकारा पाने का एकमात्रा उपाय मोक्ष अथवा मुक्ति है।[4] अतः परमात्मा में लीन होने का योग ही साध्न है। ध्र्म और दर्शन को ज्ञान को लिए मनुष्य को चित्त अथवा आन्तरिक स्वरूप को नियन्त्रित करना होता है। हृदय की शु(ता और मन की शान्ति गहन चिन्तन के बिना सम्भव नहीं हैं। अतः गूढ़ अध्ययन के लिए और प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने क लिए योग साध्ना की आवश्यकता पड़ती है। चार्वाक को छोड़कर प्रायः सभी भारतीय दर्शनों ने योग के महत्व की स्वीकार किया है।

मानवीय मूल्यों के संरक्षण हेतु संस्कृत भाषा की उपयोगिता

आजकल के भौतिकवादी युग में जीवन से नैतिक मूल्य लुप्त हो रहे हैं। उनका स्थान स्वार्थ, लोभ, हिंसा और अधैर्य ने ले लिया है। भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत हैं। अतः इसका मुख्य लक्ष्य मानव उन्नति है। अध्यात्म के सिद्धान्त जीवन को पवित्रा बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। वैदिक युगीन संस्कृति मानव जीवन में आस्था और नैतिक नियमों पर बल देती है। इसलिए यह सहस्रों शताब्दियों से जनमानस में जीवित है। आधुनिक युग की मानसिक बीमारियों से निपटने में केवल यही एक उपाय है कि जीवन में पुनः इन मानवीय मूल्यों का समावेश हों।

संस्कृत में निहित सूक्तियाँ हमारे जीवन में उत्साह और स्पफूर्ति का संचार करती हैं। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की धरणा संसार के समस्त प्राणियों में एकता की भावना का सपफल सूत्रा है। इस भावना को धरण करने से एक देश और एक जाति का दूसरे से जो वैमनस्य है, वह स्वतः दूर हो जाएगा।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।[5]
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम्।।

इसी सन्दर्भ में भगवद्गीता एक आदर्श ग्रन्थ है जिसमें कहा गया है कि मानव मात्रा आपस में कर्त्तव्य समझकर परस्पर प्रेम करें। 'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'।[6] यह अपनेपन की भावना ही पारिवारिक प्रेम का मूल है। मानव के अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए वेद में एक प्रार्थना निर्धरित हैं– 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् हे परमात्मन्! हमें अज्ञानान्धकार से निकालकर ज्ञानरूपी ज्योति की ओर ले चलिए। ज्ञान प्राप्त करने पर मनुष्य का मन निर्मल, पवित्रा और निष्पाप हो जाता है और वह सदा उचित मार्ग पर चलता है। इसी प्रकार वेद का एक उपदेश है– 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बन। आज मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि वह मनुज बने। मानवीयता की भावना से रहित होकर मनुष्य असुर बन जाता है। अतः मानव की महत्ता इसी में हैं कि सद्बु(के बल पर मननशील बने और समाज के लिए कल्याणकारी कार्य करे।

भारतीय संस्कृति की एक विशेष विचारधरा 'कर्मसि(ान्त' है। जीवन में कर्म अत्यन्त आवश्यक है। इसी में जीवन की पूर्णता है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि इस लोक में मनुष्य कर्म करते हुए 100 वर्ष तक जीने की कामना करे।

''कुर्वन्नेवेद् कर्माणि जिजीविषेच्छतसमाः।''

इसी प्रकार भगवद्गीता में भी कर्मयोग पर बल देते हुए कहा गया है– ''कर्मण्येवाध्किारस्ते मा पफलेषु कदाचन्।'' अर्थात् हे अर्जुन! तेरा कर्म करने मात्रा में अध्किार है उसकी पफल प्राप्ति में नहीं। अतः पफल की इच्छा किए बिना हमें सदैव निष्काम कर्म करते रहना चाहिए।

सदाचार और शिष्टाचार भी मानवजीवन का एक अभिन्न अंग है। संस्कृत भाषा में पदे–पदे सदाचार व चरित्रा–निर्माण सम्बन्धी श्लोक भरे पड़े हैं। शील के अन्तर्गत विनय, सदाचार और मृदुरता आदि गुण आते हैं। भर्तृहरि ने इस विषय में कहा है– 'शील परं भूषणं।' अर्थात् शील से बढ़कर कोई आभूषण नहीं है। शिष्टाचार का प्रथम सोपान यह है कि अपने कुटुम्ब के वृ(जनों, माता–पिता, गुरुजन और बड़ों के साथ आदर तथा सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाए। उपनिषदों में माता–पिता और गुरुजनों को देवों की संज्ञा दी गई है। यथा–

''मातृ देवो भव, पितृ देवो भव।
आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव।।''

सांस्कृतिक ध्रोहर के संचरण में संस्कृत की भूमिका : दक्षिण–पूर्वी एशिया के देशों– श्रीलंका, म्यांमार, मलेशिया, इण्डोनेशिया, थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम और पिफलिपीन आदि पर भारतीय संस्कृति, ध्र्म, कला और संस्कृत भाषा का व्यापक प्रभाव पड़ा है। इन देशों में व्यापार की साथ–साथ भारत के धर्म प्रचारक शैव, वैष्णव और बौद्ध आदि ध्र्म का प्रचार करने के लिए गए थे और उन्होंने अनेकों उपनिवेश भी बसाए। इनकी भाषा, संस्कृति, शासनविधि, कला और ध्र्म आदि सभी भारतीय रहे हैं। इण्डोनेशिया में अनेक बोलियाँ यथा–अचेहनी, गयो, बतक, सुन्दानयी इत्यादि की भाषा व्यापक रूप संस्कृतमूलक हैं। रामायण, महाभारत, पंचतन्त्रा आदि ग्रंथों की मूल मानकर उनकी भाषा से शब्द ग्रहण करके आज भी वहाँ पर साहित्य सृजन हो रहा है। इन द्वीपों में संस्कृत शिलालेखों की भरमार है जो इस बात का सूचक हैं कि भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा का यहाँ पर आन्तरिक रूप से गहन प्रभाव विद्यमान हैं। संस्कृत से विकसित कुछ शब्द आज भी यहाँ प्रचलित हैं यथा– घण्टा, गण्टा, दधि ददि, सन्तान सेंतान, अग्नि गेनि, लक्ष लास्सा आदि।

थाईलैंड ;स्यामद्ध की भाषा, कला तथा संस्कृति पर भारत की छाप स्पष्ट विद्यमान है। गान्धर स्याम का एक प्रमुख राज्य था जिसका एक भाग विदेह राज्य और उसकी राजधनी मिथिला कहलाती थी। यहाँ भारत से समय–समय पर ध्र्माचार्य आए थे। यहाँ के राजाओं द्वारा बनवाए गए विहारों, स्तूपों तथा चौत्यों पर भारतीय वास्तुकला का स्पष्ट प्रभाव है। स्याम की भाषा पर संस्कृत और पालि के शब्दों का प्रभाव है। मन्त्राी को मोन्त्राी, अमात्य को अमच, पुरोहित को परोहित कहा जाना इसका स्पष्ट उदाहरण हैं। यहाँ के राजा बौ(और हिन्दु ध्र्म के अनुयायी रहे हैं। आज भी यहाँ अनेक देवी–देवताओं के मन्दिर हैं, जिनके पुजारी ब्राह्मण हैं और वे राजाओं के अभिषेक और धर्मिक कृत्य सम्पन्न कराते हैं।

भारत के पूर्व में स्थित बर्मा से मलाया तक के प्रदेशों को भारतीय व्यापारी सुर्वणभूमि और इण्डोनेशिया के विविध द्वीपों, जावा, सुमात्राा, बाली और वोर्नियो क सुवर्णद्वीप कहते थे क्योंकि बर्मा की इरावदी और सालविन नदियों की रेत से सोना निकाला जाता है और मलाया में सोने की खाने हैं। व्यापारिक सम्बन्धें के साथ–साथ यहाँ पर संस्कृति का संचरण भी हुआ। इसकी पुष्टि अभिलेखों, यात्रियों के वर्णनों तथा कथा–साहित्य से होती है।

वर्तमान में भी संस्कृत को विदेशों में सम्मानजनक स्थान प्राप्त है। अमरीकी कांग्रेस पुस्तकालय में करीब 7000 संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकें संग्रहीत हैं। अमरीका के पीरू प्रान्त की कुईचुआ भाषा संस्कृत शब्दों से भरी है। इसलिए यहाँ अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत पढ़ाई जाती है। चीन, जापान, तिब्बत, नेपाल

आदि देशों में संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थों की भरमार है, जो संस्कृत भाषा की महत्व को दर्शाती है। रूस के मास्को, लेनिनग्राद आदि विश्वविद्यालयों में 'भारतीय भाषा भूमिका' नामक पाठयक्रम में वहाँ के छात्रा संस्कृत विषय में अनुसंधन करते हैं। डॉ. राधकृष्णन् और राहुल सांकृत्यायन की आधुनिक खोजों से सि(हो चुका है कि आज भी एशियाई देशों में संस्कृत साहित्य को आदर और सत्कार की दृष्टि से देखा जाता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार संस्कृत में निहित शिक्षाएँ आज के विद्यार्थियों की चारित्रिक एवं सर्वांगीण विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। किसी भी राष्ट्र का मूल्यांकन उस देश में रहने वाले लोगों के गुणों से किया जाता है न कि संख्या से। भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा इस दिशा में सहस्रों वर्षों से निरन्तर प्रयासरत है।

इस प्रकार संस्कृत पूरे देश को जोड़ने वाली भाषा है। संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति अधूरी है। वर्तमान में भी संस्कृत में अनेक पत्रा–पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार हैं– 1. सुधर्मा ;दैनिकद्ध मैसूर, ;2द्ध संस्कृत भावितव्यम्, नागपुर ;3द्ध गाण्डीवम्, काशी ;4द्ध संस्कृतश्री ;पाक्षिकद्ध, श्रीरंगम् ;5द्ध संस्कृतामृतम् ;मासिकद्ध, दिल्ली इत्यादि। इनकी सूची इतनी लम्बी है जो एक शोधपत्रा में नहीं समा सकती। संस्कृत की ये पत्रा–पत्रिकाएँ संपूर्ण देश में पफैली हुई हैं। जो हमारी सांस्कृतिक ध्रोहर का संव(र्न कर रही हैं। देश का कोई भी विश्वविद्यालय ऐसा नहीं है जहाँ संस्कृत विषय का अध्ययन नहीं होता हो। राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान और मानव संसाध्न विकास मंत्रालय से इस बारे में विस्तृत जानकारी मिल सकती है। अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद्, पूना के अध्विेशन देश के विभिन्न भागों में होते हैं। विश्व स्तर पर भी संस्कृत सम्मेलनों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत परिषद् है।

अतः संस्कृत पूरे देश की सांस्कृतिक भाषा है। यह देश की धर्मिक, सामाजिक एकता से जुड़ी हुई है। संस्कृत के बिना इस देश की संस्कृति एवं परम्पराओं को समझ पाना असम्भव है। पृथ्वी हमारी माता है– 'माता भूमि' मनुष्य बनो– 'मनुर्भव'। सब प्राणियों को हम मित्राता की दृष्टि से देखें– 'मित्रास्य चक्षुषा'। सब मिलकर चलें– 'संगच्छध्वं सवदध्वं...।' द्युलोक से लेकर भूलोक तक शान्ति हो– 'द्यौ शान्तिः' आदि वेद के सार्वभौम सन्देशों को समझने के लिए संस्कृत का पठन–पाठन करना ही होगा तभी 'वसुध्ैव कुटुम्बकम्' का संदेश सार्थक होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *यजुर्वेद, 7/14*
2. *उपाध्याय, ब. ;1973द्ध , संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 171*
3. *माथुर, क. ;1982द्ध , संस्कृति को संदर्भ, पोइन्टर पब्लिशरर्स, जयपुर, पृ. 84, 85*
4. *सरस्वती, ओ. ;1982द्ध, पातंजल योगसूत्रा, गीता प्रेस, गोरखपुर*
5. *हितोपदेश, 1.69, गीता प्रेस, गोरखपुर 1989*
6. *श्रीमद्भगवद्गीता, 3.11, भक्तिफवेदान्त बुक ट्रस्ट, 1990*
7. *ईशावस्योपनिषद्, मन्त्र 3*
8. *श्रीमद्भागवद्गीता, 2.47*
9. *भर्तृहरि, नीतिशतकम्, श्लोक 7–8*
10. *तैतिरीयोपनिषद्, 11.2*